E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

प्रत्यक्षप्रमाण (सविकल्पक ज्ञान और निर्विकल्पक ज्ञान)

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

तर्कभाषा के अनुसार प्रमाणों की संख्या चार बताई गई है-"तानि च प्रमाणानि चत्वारि"। न्यायसूत्र का उल्लेख करते हुए इनके नाम इस प्रकार बताए गए हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द-"प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि"।

चार प्रमाणों के विभागक्रम में सर्वप्रथम 'प्रत्यक्ष' प्रमाण को रखा गया है, क्योंकि अनुमानि तीन प्रमाणों का वह मूलभूत होने से ज्येष्ठ है और उसकी स्वतन्त्र रूप से पृथक्तया प्रमाण के रूप में प्रसिद्धि भी है, तथा वादी-प्रतिवादी सभी लोग उसका प्रतिपादन करते हैं, इसीलिए उसकी प्रधानता भी है। अतः 'प्रत्यक्ष' को ही सर्वप्रथम रखकर उसके बाद 'अनुमान', तदनन्तर प्रत्यभिज्ञानप्रत्यक्षरूप 'उपमान' को रखा गया है जिससे कोई व्यक्ति उसका अनुमान में अन्तर्भाव न कर सके।

प्रत्यक्ष प्रमाण को परिभाषित करते हुए तर्कभाषाकार कहते हैं-"साक्षात्कारिप्रमाकरणं प्रत्यक्षम्"। अर्थात् साक्षात्कारिणी (वस्तु का साक्षात्कार करने वाली) प्रमा के करण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। और साक्षात्कारिणी (साक्षात्कार करने वाली) प्रमा वह है, जो इन्द्रिय से उत्पन्न (जन्य) होती है-"साक्षात्कारिणी च प्रमा सैवोच्यते या इन्द्रियजा"।

इसके दो भेदों की चर्चा करते हुए तर्कभाषाकार का कथन है-"सा च द्विधा सविकल्पकनिर्विकल्पकभेदात्" अर्थात् सविकल्पक तथा निर्विकल्पक के भेद से वह दो प्रकार की होती है। उसके तीन प्रकार के करण होते हैं-कभी इन्द्रिय, कभी इन्द्रिय और अर्थ का सन्निकर्ष और कभी निर्विकल्पक ज्ञान-"तस्याः करणं त्रिविधम्। कदाचिद् इन्द्रियं, कदाचिद् इन्द्रियार्थसन्निकर्षः, कदाचिज्ज्ञानम्"।

यहाँ ध्यातव्य है कि इन्द्रियजन्य प्रमा को ही 'साक्षात्कारिणी प्रमा' कहते हैं। जो 'प्रमा इन्द्रियजन्य' नहीं होती, उसे 'साक्षात्कारिणी प्रमा' नहीं कहते। जैसे-अनुमिति, उपमिति और शाब्दबोध क्योंकि इन्द्रियजन्य प्रमा ही वस्तु का साक्षात्कार कराती है। उससे अतिरिक्त प्रमाएं वस्तु का साक्षात्कार

नहीं करातीं। वस्तु के साक्षात्कार करने का अर्थ है कि वस्तु के साक्षात् होने पर उसे ग्रहण करना। 'साक्ष' का अर्थ है-अक्षेण-इन्द्रयेण सहितः-सन्निकृष्ट साक्षः अर्थात् इन्द्रियसन्निकृष्टः। एवं च जिस प्रमा की उत्पत्ति, इन्द्रिय से होगी, वही प्रमा वस्तु का ग्रहण करने के लिए वस्तु के साथ, इन्द्रियसन्निकर्ष (सम्बन्ध) की अपेक्षा करेगी, तभी वह इन्द्रियसन्निकृष्ट वस्तु की ग्राहक हो सकेगी और जिस प्रमा की उत्पत्ति, इन्द्रिय से नहीं होगी, उसे वस्तु के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष की अपेक्षा नहीं होगी, तब उस प्रमा में वस्तु का साक्षात्कारित्व यानि इन्द्रियसन्निकृष्ट वस्तु का ग्राहकत्व भी नहीं होता।

साक्षात्कारिणी प्रमा अर्थात् प्रत्यक्षप्रमा के दो भेद किये गये हैं-एक 'निर्विकल्पक' और दूसरा 'सविकल्पक'। सम्पूर्ण व्यवहार, 'सविकल्पक ज्ञान' से हुआ करते हैं। तथापि 'सविकल्पकज्ञान' की उत्पत्ति, 'निर्विकल्पकज्ञान' के आधार पर ही होती है। इसलिये 'सविकल्पकज्ञान' के पूर्व 'निर्विकल्पकज्ञान' को समझना आवश्यक है।

जहाँ किसी वस्तु का केवल स्वरूप प्रतीत होता है, उसके नाम, जाति, आदि की प्रतीति नहीं होती, उसे 'निविकल्पकज्ञान' कहते हैं। प्रायः व्यवहार में आने वाले सभी जान 'सविकल्पक' ही होते हैं। इसलिये निर्विकल्पकज्ञान की कल्पना हम नहीं कर पाते हैं। निर्विकल्पकज्ञान का परिचय बालक तथा गूंगे के ज्ञान के समान दिया जाता है-'बालमूकादिविज्ञानसदृशं निर्विकल्पकम्'। निर्विकल्पकज्ञान को बालक या गूँगे के ज्ञान की उपमा इतने ही अंश में है कि वे दोनों ही ज्ञान, ज्ञाता के द्वारा अनभिलाप्य हैं। पूर्ण अंश में यदि इस उपमा को मानेंगे तो जैसे निर्विकल्पकज्ञान से ज्ञाता की प्रवृत्ति नहीं होती, वैसे ही बालक और गूंगे के ज्ञान से भी प्रवृत्ति नहीं होगी। किन्तु वालक और गूंगे भी प्रौढ तथा वाक्चतुर व्यक्तियों के समान ही अपने ज्ञान से तत्तत् कार्यों में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं। जैसे- बालक 'घट-पट' आदि वस्तुओं को देखता है, तो उसे भी घट-पटादि वस्तुओं के स्वरूप का ज्ञान उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार बड़े व्यक्ति को होता है। जहाँ तक किसी वस्तु के स्वरूप-ज्ञान का सम्बन्ध है, वहाँ तक बड़े व्यक्ति के और अत्यन्त अबोध बालक के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् वस्तु के ग्रहणकाल में दोनों का ज्ञान एक-सा ही है। किन्तु बड़ा व्यक्ति उस वस्तु के 'नाम, जाति' आदि को भी जानता है, इस कारण व्यवहार करते समय वह उस वस्तु के नाम, जाति का उपयोग करता है। उस समय उस बड़े व्यक्ति का वह (निर्विकल्पकज्ञान) सविकल्पक हो जाता है। अबोध बालक उस वस्तु के नाम, जाति

आदि से अनभिज्ञ है, इसलिये वह नाम, जाति आदि से उसका व्यवहार भी नहीं कर पाता है। इस प्रकार बालक और बड़े व्यक्ति के ज्ञान में वस्तुस्वरूपज्ञान के समय यद्यपि कोई अन्तर नहीं है, तथापि व्यवहारकाल में उन दोनों में अन्तर हो जाता है । अतः बालक और मूक पुरुषों का ज्ञान सविकल्पक कहा जाता है।

किसी वस्तु के साथ इन्द्रिय का सम्बन्ध होने के पश्चात् उस अर्थ सन्निकृष्ट (सम्बद्ध) इन्द्रिय से निर्विकल्पकज्ञान पैदा होता है। उस निर्विकल्पकज्ञान में वस्तु के स्वरूपमात्र का ग्रहण होता है। उस समय उस वस्तु में नाम, जाति आदि की योजना नहीं होती। अर्थात् निर्विकल्पकज्ञान में वस्तु के नाम, जाति आदो का ग्रहण नहीं होता। वह निर्विकल्पकज्ञान केवल वस्तुस्वरूप का ही ग्रहण करता है। इस निर्विकल्पकज्ञान का 'करण' 'इन्द्रिय' होता है।

जब निर्विकल्पक ज्ञान के पश्चात् नाम, जाति आदि के सहित "यह 'डित्थ' नाम का है", "यह ब्राह्मण है", "यह श्याम है"-इस प्रकार विशेषण-विशेष्यभाव अर्थात् विशेषण तथा विशेष्य का ग्रहण करने वाला 'सविकल्पक ज्ञान' उत्पन्न होता है, तब 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' करण होता है, और 'निर्विकल्पकज्ञान' अवान्तर व्यापार होता है, और 'सविकल्पकज्ञान' अपने करण का फल होता है।

'निर्विकल्पकज्ञान' की उत्पत्ति में 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' रूप एक अवान्तर व्यापार होता है। सविकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति में 'इन्द्रियार्थसन्निकर्ष' और 'निर्विकल्पकज्ञान' ये दो अवान्तरव्यापार हैं।